Nav Jyoti, Vol. 6, No. 12, January-June 2018 ISSN : 2249-7331

भारत में अंतरजातीय विवाह : डॉ0 अंबेडकर के विचारों का विश्लेषण

डॉ0 रीता कुमार

पूर्व शोध छात्रा, स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची

दलित का मतलब पहले पिड़ित, शोषित, दबा हुआ, खिन्न, उदास, टुकड़ा, खंडित, तोड़ना, कुचलना, दला हुआ, पीसा हुआ, मसला हुआ, रौंदा हुआ, विनष्ट हुआ करता था, लेकिन अब अनुसूचित जाति को दलित बताया जाता है। अब दलित शब्द पूर्णता जाति विशेष को बो जाने लगा हजारों वर्षों तक अस्पृश्य या अछूत समझी जाने वाली उन तमाम शोषित जातियों के लिए सामूहिक रूप से प्रयुक्त होता है जो हिंदू धर्म शास्त्रों द्वारा हिंदू समाज व्यवस्था में सबसे निचले अर्थात चौथे पायदान पर स्थित है। और बौद्ध ग्रंथ में पांचवे पायदान पर चांडाल के रूप में है। संवैधानिक भाषा में इन्हें ही अनुसूचित जाति कहा गया है। भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार भारत की जनसंख्या में लगभग 16.6 प्रतिशत या 20.14 करोड़ आबादी दलितों की है।

''दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ है–दलन किया हुआ। इसके तहत वह हर व्यक्ति आ जाता है जिसका शोषण, उत्पीड़न हुआ है। रामचंद्र वर्मा ने अपने शब्दकोश में दलित का अर्थ लिख है, मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ, विनष्ट किया हुआ। पिछले छह सात दशकों में दलित पद का अर्थ काफी बदल गया है। अंबेडकर के आंदोलन के बाद यह शब्द हिंदू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर स्थित हजारों वर्षों से अस्पृश्य समझी जाने वाली तमाम जातियों के लिए सामूहिक रूप से प्रयोग होता है।''[1] अब दलित पद अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों की आंदोलनधर्मिता का परिचायक बन गया है। भारतीय संविधान में इन जातियों को अनुसूचित जाति नाम से जाना जाता है। भारतीय समाज में बाल्मिकी या भंगी को सबसे नीची जाति समझा जाता रहा है और उसका पारंपरिक पेशा मानव मल की सफाई करना रहा है। परंतु आज के समय में इस स्थिति में बहुत बदलाव आया है। दलित अर्थ शंकराचार्य ने मधुराष्टकम् में द्वैत से लिया है। उन्होंने दलित मधुर कहकर श्रीकृष्ण को संबोधित किया है।

भारत में दलित आंदोलन की शुरूआत ज्योतिराव गोविंदराव फुले के नेतृत्व में हुई। ज्योतिबा जाति से माली थे और समाज के ऐसे तबके से संबंध रखते थे जिन्हें उच्च जाति के समान अधिकार नहीं प्राप्त थे। इसके बावजूद ज्योतिबा फूले ने हमेशा ही तथाकथित नीची जाति के लोगों के अधिकारों कीी पैरवी की। भारतीय समाज में ज्योतिबा का सबसे दलितों की शिक्षा का प्रयास था। ज्योतिबा ही वो पहले शख्स थे जिन्होंने दलितों की शिक्षा के लिए न केवल विद्यालय की वकालत की बल्कि सबसे पहले दलित विद्यालय की भी स्थापना की। ज्योति में भारतीय समाज में दलितों को एक ऐसा पथ दिखाया था जिस पर आगे चलकर दलित समाज और अन्य समाज के लोगों ने चलकर दलितों के अधिकारों की कई लडाई लडी। यू ंतो ज्योतिबा ने भारत में दलित आंदोलनों का सूत्रपात किया था लेकिन इसे समाज की मुख्य धारा से जोडने का काम अंबेडकर ने किया। अंबेडकर अछूतों के मसीहा समझे जाते हैं। उन्हें अधीनस्थ लोगों का नेता कहा जाता है। वे स्वयं अछूत थे, महार जाति में उनका जन्म हुआ था और एक अछूत के जीवन में जो आहत व वेदना होती है उसे उन्होंने भोगा था, जीया था। जाति व्यवस्था के कट्टर विरोधी थे। उनका एक विदू का कार्यक्रम था जाति को नष्ट कर दो और फिर सब ठीक हो जाएगा। अस्पृश्यता का अवसान हो जाएगा जिसे धर्म कहते हैं समाप्त हो जाएगा और इसी तर्ज पर धर्मग्रंथ भोथरे हो जाएंगे। एक बात और जिसका जिक्र किये बिना दलित आंदोलन की बात बेमानी है। वह है बौद्ध धर्म। ''ईसा पूर्व 600 ईसवी में ही बौद्ध धर्म ने हिंदू समाज के निचले तबकों के अधिकारों के लिए आवाज उठाई। भगवान गौतम बुद्ध ने इसके साथ ही बौद्धधर्म के जरिए एक सामाजिक और राजनीतिक क्रांति लाने की भी पहल की। इसे राजनीतिक क्रांति कहना इसलिए जरूरी है क्योंकि उस

समय सता पर धर्म का अधिपत्य था और समाज की दिशा धर्म के द्वारा तय की जाती थी।''[2] ऐसे में समाज के निचले तबके को क्रांति की जो दिशा भगवान बुद्ध ने दिखाई वो आज भी प्रासंगिक है। भारत में चार्वाक के बाद भगवान बुद्ध ही पहले ऐसे शख्स थे जिन्होंने ब्राहमणवाद, जातीवाद और अंधविश्वास के खिलाफ न केवल आवाज उठाई बल्कि एक दर्शन भी दिया। जिससे कि समाज के लोग बौद्धिक दास्यता की जंजीरों से मुक्त हो सकें। अंबेडकर का विचार था कि ब्राहमणवाद और हिंदू धर्म एक दूसरे को शक्ति देते हैं और समाज में भेदभाव पैदा करते हैं। जाति प्रभुत्व के भारतीय समाज में उन्हों दमन और शोषण की व्याख्या की। यह कहा जाता था कि भूले से भी यदि कोई शास्त्र वचन या श्लोक शूद्र के कानों में पड जाये तो वह अधार्मिकता तथा पाप भरा कार्य था। अंबेडकर के अनुसार मनुस्मृति में ही ऐसी घृणित व्यवस्थाएं स्थापित की गई थीं। उनका यह भी मत था कि वेद, स्मृतियां तथा अन्य शास्त्रों ने मिलकर अस्पृश्यों तथा दलितों के विरूद्ध व्यवस्थाएं स्थापित कर ब्राहमणों को प्रभुत्व प्रदान कर दिया था। अंबेडकर के अधीनस्थ समूह परिप्रेक्ष्य ने उन सारी व्यवस्थाओं को देखा था जो शास्त्रों से पैदा हुई थी। ''अपनी पुस्तक एनहिलेशन ऑफ कास्ट में उन्होंने लिखा था कि ये शास्त्र हिंदू धर्म के अंग नहीं थे बल्कि वे नियम सूची थे, जिनके आधार पर नीची जातियाों के मूलभूत जीवन की आवश्यकताओं को नकार दिया गया था और समाज में उन्हें समान प्रस्थिति से वंचित रखा गया था। उन्होंने लिखा कि यह बात अब निसंकोच भाव से कही जा सकती है कि ऐसा धर्म बेकार है जो इस प्रकार की परिस्थितियां पैदा करे। ऐसे धर्म को नष्ट करने के लिए क्रांतिजन्य कार्य किये जाने चाहिए जो अपने लोगों को ही विभाजित करे और बहुत से लोगों को अस्पृश्य समूहों में बांट दे।ऐसा धर्म शर्मनाक है।''[3]

यदि समाज के निचले तबकों के आंदोलनों का आदिकाल से इतिहास देखा जाए तो चार्वाक को नकारना भी संभव नहीं होगा। यद्यपि चार्वाक पर कई तरह के आरोप लगाये जाते हैं इसके बावजूद चार्वाक वो पहला शख्स था जिसने लोगो को भगवान के भय से मुक्त होना सिखाया। भारतीय दर्शन में चार्वाक ने ही बिना धर्म और ईश्वर के सुख की कल्पना की। इस तर्ज पर देखने पर चार्वाक भी दलितों की आवाज उठाता नजर आता है। खैर बात को लौटाते हैं उस वक्त जिस वक्त दलितों के अधिकारों को कानूनी जामा पहनाने के लिए अंबेडकर ने लडाई शुरू की। वक्त था जब हमारा देश भारत ब्रिटिश उपनिवेश की श्रेणी में आता था। लोगों के ये दासता का समय रहा है लेकिन दलितों के लिए कई मायनों मे स्वर्णकाल था। आज दलितों को भारत में जो भी अधिकार मिले हैं उसकी पृष्ठभूमि इसी शासन की देन थी। यूरोप में हुए पुर्नजागरण और ज्ञानोदय आंदोलनों के बाद मानवीय मूल्यों का महिमा मंडन हुआ। यही मानवीय मूल्य यूरोप की क्रांति के आदर्श बने। इन आदर्शों की जरिए ही यूरोप में एक ऐसे समाज की रचना की गई जिसमें मानवीय मूल्यों को प्राथमिकता दी गई। ये अलग बाद है कि औद्योगिकीकरण के चलते इन मूल्यों की जगह सबसे पहले पूंजी ने भी यूरोप में ली। लेकिन इसके बावजूद यूरोप में ही सबसे पहले मानवीय अधिकारों को कानूनी मान्यता दी गई। इसका सीधा असर भारत पर पडना लाजमी था और पडा भी। इसका सीधा सा असर हम भारत के संविधान में देख सकते है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना से लेकर सभी अनुच्छेद इन्हीं मानवीय अधिकारों की रक्षा करते नजर आते हैं।

जाति एवं अंतरजातिय विवाह

अंबेडकर के विचार में जाति व्यवस्था में जाति की यह सामान्य क्रियाविधि है। अतीत के रहस्यों को खोलने वालों के मार्ग में अनेक कठिनाइयां आती हैं और निःसंदेह भारत में जाति व्यवस्था अति प्राचीन संस्था है। इन हालात में यह और भी ज्वलंत यथार्थ है कि जहां तक हिंदूओं का संबंध है उनके बारे में कोई आधिकारिक या लिखित संकेत नहीं हैं तथा भारतीय दृष्टिकोण ऐसा बन गया है कि वह इतिहास लेखन को मूर्खता मानते हैं। क्योंकि उनके लिए जगत मिथ्या है लेकिन ये संस्थाएं जीवित रहती हैं। यद्यपि चिरकाल तक इनका लिखित प्रमाण नहीं रहता और उनके रीति रिवाज व नैतिक मूल्य अवशेषों की भांति अपने आप में एक इतिहास हैं। हम अपने कर्तव्यों में सफल होंगे यदि हम अतिरके पुरूष और अतिरेक स्त्री से संबंधित समस्याओं का हिंदूओं द्वारा जो निदान किया गया है। उसकी जांच करें।

''सतही तौर पर देखने वाले व्यक्ति को हिंदू समाज की सामान्य क्रियाविधि जटिल लगे किंतु वह स्त्रियों से संबंधित तीन असाधारण रीतियां प्रस्तुत करती हैं ये हैं–

1. सती या विधवा को उसके मृत पति के साथ जलाना।
2. थोपा गया आजीवन वैधव्य जिसके अंतर्गत एक विधवा को पुनः विवाह करने की आज्ञा नहीं है।
3. बालिका विवाह''[4]

सन्यास के बाद विधु में विकट लिप्सा होती है परंतु कुछ मामलों में यह शुद्ध मानसिक कारणों से ही संभव है। जहां तक अंबेडकर की बात है तो उनका कहना है कि आज तक इन प्रथाओं के उदभव की कोई वैज्ञानिक व्याख्या सामने नहीं आई है। अनेक दार्शनिक सिद्धांत इन प्रथाओं की प्रतिष्ठा में प्रतिपादित किए गये है। परंतु कहीं से इनके उदभव और अस्तित्व का संकेत नहीं मिलता। सती सम्मानीय है। क्योंकि यह पति पत्नी के बीच शरीर और आत्मा की संपूर्ण एकात्मकता और श्मशान से परे तक समर्पण को दर्शाती है क्योंकि इसमें पत्नीत्व को साकार रूप दिया गया है। जैसा की उमा ने अच्छी तरह उस समय स्पष्ट किया है जब उन्होंने कहा था ''हे महेश्वर अपने पतिदेव के लिए नारी का समर्पण ही उसका सम्मान है यही उसका शाश्वत स्वर्ग है। भावुकता में वह आगे कहती है मेरी धारणा है कि यदि आप मुझसे संतुष्ट नहीं है तो मेरे लिए स्वर्ग की कामना करना बेकार है।''[5] आजीवन वैधव्य क्यों सम्मानीय है मैं नहीं जाता न ही मुझे कोई ऐसा व्यक्ति मिला है जो इसकी प्रशंसा करता हो। हालांकि पालन करने वाले अनेकानेक है। बालिका विवाह की प्रशंसा में डॉ केतकर कहते हैं कि एक सच्चे आस्थावान स्त्री या पुरूष को विवाह सूत्र में बंधने के बाद अन्य पुरूष या स्त्री से लगाव नहीं करना चाहिए। इस प्रकार की पवित्रता न केवल विवाह के उपरांत बल्कि विवाह पूर्व भी आवश्यक हैं क्योंकि चारित्रय का केवल यही सही आदर्श है। किसी अपरिणता को पवित्र नहीं माना जा सकता यदि वह उस व्यक्ति के अलावा जिससे उसका विवाह होने वाला है। किसी अन्य व्यक्ति से प्रणय करती हैं यदि वह ऐसा करती है तो यह पाप है। इसलिए एक लडकी के लिए यह अच्छा होगा कि कामवासना जागृत होने से पूर्व उसे यह पता होना चाहिए कि उसे किससे प्रेम करना है। तब उसका विवाह किया जाये।

अंबेडकर इन्हीं बातों में जाति अंतः विवाह की गूंज पाते थे। उनका कहना था की ऐसी प्रथाओं को क्यों सम्मानित किया गया इसका कोई जवाब नहीं है परंतु हमें यह नहीं बतातीं कि ये रिवाज कैसे पडे। इनका मानना है कि इनको सम्मान देने के कारण ही यह है कि इन्हें अपनाया गया। जिस किसी को भी 18वीं शताब्दी के व्यक्तिवाद का थोडा सा भी ज्ञान होगा वह जरूर मानेगा कि यह प्रथा सदा से रही है परंतु इनमें भी आंदोलन सवोपरी होता हैं बात में उन्हें न्याय संगत बनाने के लिए और उन्हें नैतिक बल देने के लिए उन्हें दार्शनिक सिद्धांतों का संबल दे दिया जाता है। इसी तरह प्रश्न आता है कि ये कैसे बढे? उनका कहना था कि जाति संरचना में इनकी आवश्यकता थी और उनको लोकप्रिय बनाने के लिए सिद्धांतों की बैसाखी पकडा दी गई। वे मानते थे कि ये रिवाज कितने क्रूर कष्टकारी और घातक हैं। रिवाज साधन मात्र हैं जबकि उन्हें आदर्श घोषित किया गया। परंतु यह हमें परिणामों के बारे में भ्रमित नहीं कर सकते। सरलता से कहा जा सकता है कि साधनों को आदर्श बना देना आवश्यक होता है और मामले में कोई हर्ज नहीं है किंतु हम अपने साधन की प्रकृति नहीं बदल सकते। ''कानून बना सकते हैं कि सभी बिल्लयां व कुते हैं जसे आप किसी साधन को उददेश्य मान सकते हैं परंतु आप साधन की प्रकृति में परिवर्तन नहीं कर सकते। अतः बिल्लियों को कुते नहीं बना सकते। ठीक ऐसे ही साधन को साध्य मान सकते है। इसी कारण इनका कहना है कि साधन और साध्य को एकाकर कर दिया जाए परंतु यह कैसे उचित ठहराया जा सकता है कि जाति प्रथा और सजातीय विवाह प्रथा के लिए सती प्रथा आजीवन विधवा अवस्था और बालिका विवाह विधवा स्त्री और विधुर पुरूष की समस्या के समाधान है।''[6] सजातीय विवाह व्यवस्था को बनाये रखने के लिए ये रिवाज आवश्यक है। जबकि सजातीय विवाह प्रथा के अभाव में जाति प्रथा का अस्तित्व बने रहना संदेहास्पद है।

भारत में जाति प्रथा के प्रचलन और संरक्षण की क्रियाविधि पर विचार करते हुए वे अगला प्रश्न उठाते हैं कि इसकी उत्पति कहां से हुई। इसके मूल का प्रश्न एक कडवा प्रश्न है और जात पांत के

अध्ययन में इसी दुखद पहलू की अवहेलना की गई है। कुछ ने इसका समर्थन किया है और कुछ ने इस प्रयत्न पर जानबूझकर पर्दा डाल दिया है। कुछ लोग समझ पाने में सफल रहे हैं कि जात पांत का मूल कहा हो सकता है। वे कहते हैं कि यदि हम मूल के प्रति अपनी स्नेह भावना पर नियंत्रण नहीं कर सकते तो हमें उसके बहुवचन रूप अर्थात जात पांत के मूल का प्रयोग करना चाहिए। ''वैसे भारत में जात पांत के मूल के बारे में कोई उलझन पेश नहीं हुई है और सजातीय विवाह ही जात पांत का एकमात्र मूल कारण है और जब वे जाति के मूल की बात करते हैं तो इसका अर्थ सजातीय विवाह प्रथा की क्रियाविधि के मूल से है।''[7]

किसी भी समाज में व्यक्तियों की अतिसूक्ष्म अवधारणा को इतने शक्तिशाली ढंग से प्रचारित करना की मैं गंदगी उछालने जा रहा हुं। यह राजनीतिक भाषा में केारी बकवास हैं यह बात नगण्य है कि व्यक्ति मिलकर समाज बनाते हैं। समाज सर्वथा वर्गों से मिलकर बनता है। इसमें वर्ग संघर्ष के सिद्धांत पर बल देना अतिश्योक्ति हो सकती है परंतु यह सच है कि समाज में कुछ निश्चित वर्ग होते हैं। आधार भिन्न हो सकते हैं। वे वर्ग आर्थिक आध्यात्मिक या सामाजिक हो सकते हैं लेकिन समाज का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी वर्ग से संबद्ध अवश्य होता है। यह शाश्वत सत्य है और आरंभिक हिंदू समाज भी इसका अपवाद नहीं रहा होगा। जहां तक हम जानते हैं वह अपवाद नहीं था। ''यदि हम इस सामान्य नियम को ध्यान में रखते हैं तो पाते हैं कि जातपांत की उत्पति के अध्ययन में यह बहुत उपयोगी तत्व साबित हो सकता है क्योंकि हम यह निश्चित करना चाहते हैं कि वह कौन सा वर्ग था जिसने सबसे पहले अपनी जाति संरचना की। इसीलिए वर्ग और जाति एक दूसरे के दो रूप हैं। फर्क सिर्फ यह है कि जाति अपने को सजातीय परिधि में रचने वाला वर्ग है।''[8]

जाति प्रथा के मूल अध्ययन हमारे प्रश्नों का उतर दे सकता है कि वह कौन सा वर्ग था जिसने इस परिधि का सूत्रपात किया जो इसका चक्रव्यूह है? यह प्रश्न बहुत कौतूहलजनक है पंरतु यह बहुत प्रासंगिक है और इसका उतर उस रहस्य पर से पर्दा उठायेगा कि पूरे भारत में जाति प्रथा कैसे पनपी और दृढ होती गई। यह प्रथा अपनी पूरी दृढता के साथ केवल एक जाति अर्थात ब्राहमणों में प्रचलित है जो हिंदू समाज की संरचना में सर्वोच्च स्थान पर है और गैर ब्राहमण जातियों ने इसका केवल अनुसरण किया जहां इसके पालन में न तो उतरी दृढता है और न संपूर्णता।

परंतु प्रश्न यह है कि यह गैर ब्राहमणों में कैसे फैली? इसका मुख्य कारण है कि इसका विस्तार और सूत्रपात दो अलग अलग बातें नहीं है। विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि जाति प्रथा या तो भोले भाले समाज पर कानून गढने वालों ने नैतिकता का मुलम्मा चढाकर थोप दी या फिर सामाजिक विकास की भक्त भारतीय जनता में किसी नियम के अधीन पनपती रही।

''भारत में विधि निर्माता यही समूह होते थे। भारत में विधि निर्माण में यदि मनु का कोई अस्तित्व रहा है तो वह एक ढीठ व्यक्ति रहा होगा। यदि यह बात सत्य है कि उसने स्मृति अथवा विध की रचाना की तो मैं कहता हुं कि वह दुःसाहसी व्यक्ति था और जिस मानवता ने उसके विधान को शिरोधार्य किया वह वर्तमान काल की मानवता से भिन्न थी। यह अकल्पनीय है कि जाति विधान की संरचना की गई। यह कहना कोई अतिश्योक्ति न होगी कि मनु ने ऐसा कोई विधान नहीं बनाया कि एक वर्ण को इतना रसातल में पहुंचा दिया कि उसे पशुवत बना दिया और उसको प्रताडित करने के लिए एक शिखर वर्ण गढ दिया हो।''[9] यदि वह क्रूर न होता जिसने सारी प्रजा को दास बना डाला तो ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती कि वह अपना आधिपत्य जामने के लिए इतने अन्यायपूर्ण विधान की संरचना करता जो उसकी व्यवस्था में साफ झलकता हैं।

वे कहते हैं कि मैं मनु के विषय में कठोर लगता हुं परंतु यह निश्चित है कि मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि मैं उसका भूत उतार सकूं। वह एक शैतान की तरह जिंदा है किंतु मैं नहीं समझता की वह सदा जिंदा रहेगा। मनु ने जाति के विधान का निर्माण नहीं किया ओर न वह ऐसा कर सकता है। जाति प्रथा मनु से पूर्व से विद्यमान थी वह तो उसका पोषक था इसलिए उसने उसे एक दर्शन का रूप दिया। परंतु निश्चित रूप से हिंदू समाज का वर्तमान रूप जारी नही रह सकता। प्रचलित जाति व्यवस्था को

उसने जातपांत का रूप दिया और जात पांत का प्रचार किया। जातिप्रथा का विस्तार और उसकी दृढता इतनी विराट है कि यह एक व्यक्ति या वर्ग की धूर्तता और बलबूते का काम नहीं हो सकता। तर्क में यह सिद्धांत है कि ब्राहमणों ने जाति संरचना की। ''मैं मनु के विषय में जो कहा है कि अपने इस दर्शन के द्वारा उन्होंने अपने ही तरीके से इस प्रकिया को पनपने में सहायता की हो परंतु अपनी क्षमता से वे अपनी योजना कार्यान्वित नहीं करा सकते थे। चाहे कोई कितना भी गौरवशाली हो।''[10] चाहे कोई कितना ही कठोर क्यों न हो। अपने ढंग से समाज को चलाने में वह प्रशंसित तो हो सकता है किंतु यह सिलसिला ज्यादा दिन नहीं चलता । पुरातन पंथी हिंदुओं के मन यह दृढ धारणा है कि हिंदू समाज किसी तरह जाति प्रथा की प्रणाली में ढल गया और यह संस्था शास्त्रों ने बनाई है। यह विश्वास केवल विघमान नहीं है बल्कि उसे इस आधार पर न्यायसंगत भी ठहराया जाता है। यह स्थिति सुखद हो सकती है क्योंकि यह शास्त्रों से जन्मी है और शास्त्र गलत नहीं हो सकते।

इस तरह व्यक्ति पूजा का सिद्धांत भारत में जाति प्रथा के प्रचलन के निराकरण में बहुत लाभदायक सबित नहीं होता । पश्चिमी विद्वानों ने व्यक्ति पूजा को विशेष महत्व नहीं दिया लेकिन उन्होंने दूसरी व्याख्याओं को आधार बना लिया। ''उनके अनुसार भारत में जिन मान्यताओं ने जातिप्रथा को जन्म दिया वे हैं– व्यवसाय, विभिन्न कबायली संगठनों का प्रचलन, नयी धारणाओं का जन्म तथा संकर जातियां।''[11]

अन्य समाजों के समान भारतीय समाज भी चार वर्गों या वर्णों में विभाजित था ब्राहमण, क्षत्रिय वैश्य व शूद्र। आरंभ में यह अनिवार्ये रूप से वर्ग विभाजन के अंतर्गत व्यक्ति दक्षता के आधार पर अपना वर्ण बदल सकता था और इसीलिए वर्णों को व्यक्त्यिों के कार्य की परिवर्तनशीलता स्वीकार्य थी। हिंदू इतिहास में किसी समय पुरोहित वर्ग ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया और इस तरह स्वयं सीमित प्रथा से जातियों का सूत्रपात हुआ। दूसरे वर्ण भी समाज विभाजन के सिद्धांतानुसार अलग अलग खेमों में बंट गए। कुछ का संख्या बल अधिक था तथा कुछ का नगण्य। वैश्य और शूर्द वर्ण मौलिक रूप से वे तत्व हैं जिनकी जातियों की अनगिनत शाखा व प्रशाखाएं कालांतर में उभरी हैं। क्योंकि सैनिक व्यवसाय के लोग असंख्य समुदायों में सरलता से विभाजित नहीं सकते इसलिए यह वर्ण सैनिकों और शासकों के लिए सुरक्षित हो गया।

समाज का यह उपवर्गीकरण स्वाभाविक है किंतु उपरोक्त विभाजन मे अप्राकृतिक तत्व यह है कि इससे वर्णों में परिवर्तनशीलता के मार्ग अवरूद्ध हो गये ओर वे संकुचित बनते चले गए। जिन्होंने जातियों का रूप ले लिया।

ब्राहमणों के करने के कारण ऐसा हुआ। सजातीय विवाह ही हिंदू समाज का चलन था और क्योंकि इसकी शुरूआत ब्राहमणों ने की थी इसलिए गैर ब्राहमण वर्गों अथवा जातियों ने भी बढ चढ कर इसकी नकल की और वे सजातीय विवाह प्रथा को अपनाने लगे। इसने सभी उप विभाजनों को प्रभावित किया। इस तरह जातिप्रथा का मार्ग प्रशस्त हुआ। मनुष्य में नकलबाजी की जडे बहुत गहरी होती हैं जिसका परिणाम जाति प्रथा के प्रसार में सहायक सिद्ध हुआ। भारत को संपूर्ण रूप में देखें तो सब समुदायों को अपने समुदाय से लगाव हैं जैसे हिंदू हों मुसलमान हों यहुदी हों ईसाई हों या पारसी। परंतु हिंदूओं को छोडकर शेष में आंतरिक जातिभेद नहीं है। अब यही बात अगर हिंदू समाज पर भी लागू करें। तो यहां पर आंतरिक समूहों में विभेद दिखाई पडता है। जो जाति व्यवस्था का आधार है और अंतरजातिय विवाह को आगे बढाने में सबसे अक्षम कारक। यही कारण है कि भारत में अंतरजातिय विवाह को प्रश्रय व सहयोग अपेक्षित रूप से नहीं मिल पा रहा है।

संदर्भ सूची

1. प्रीटचेट फ्रांसिस, इन द 1890 पीएचपी अभिगमन तिर्थि 2010–06–02
2. एम.टाइम्स ऑफ इंडिया.कॉफ/इंडिया/हाफ ऑफ इंडियाज दलित पॉपुलेशन लाइव इन फोर स्टेट/आर्टिक्लस शो/19827757.सीएमएसं

3. दोषी एस एल, 2010, भारतीय सामाजिक विचारक, रावत प्रकाशन, जयपूर पृ 161

4. डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू.द बुद्धिज्म.नेट / 2013 / 04 / 04 / डॉ बी आर अंबेडकर टू बी मॉनुमेंटाइज्ड इन श्रीलंका

5. नागला बी के, 2015, भारतीय समाजशास्त्रीय चिंतन, रावत पब्लिकेशन, जयपूर, पृ 281–82

6. वर्मा रामचंद्र, 1987, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी नवम संस्करण, पृष्ठ 468

7. कोठारी रजनी, 2004, कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स, ओरियंट ब्लॉकस्वान, पृ 46

8. डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू.बीबीसी.कॉम / हिंदी / इंडिया / 2016 / 03 / 160309 मनुस्मृति ग्रंथ

9. कुमार स्वामी, 1913, सतीः ए डिफेंस ऑफ द ईस्टर्न वीमेन इन द सोवियोलॉजिकल रिव्यू वॉल्यूम 6 पृ 12

10. कुमार स्वामी, 1909, हिस्ट्री ऑफ कास्ट इन इंडिया, बॉम्बे प्रकाशन, बॉम्बे पृ 76

11. केतकर उद्धृत अंबेडकर , बी आर, 1915,फिजिक्स एंड पॉलिटिक्स, भौतिकी एवं राजनीति शास्त्र, बांबे प्रकाशन बांबे, पृ 60